दैनिक भास्कर

Date:19-09-23

संसद के नए भवन में नए मूल्यों का प्रतिमान बने

संपादकीय

किसी भी देश की राजनीतिक- सामाजिक यात्रा में संसद भवन मात्र एक इमारत ही नहीं बल्कि गवर्नेंस की गुणवत्ता के इतिहास का गवाह होता है। इस लिहाज से प्रधानमंत्री का पुराने संसद भवन में अंतिम भाषण गरिमानुकूल था। देश का प्रजातंत्र मंगलवार को नए मंदिर में प्रवेश करेगा। एक नया इतिहास बनेगा। क्या ऐसे में देश की जनता यह अपेक्षा नहीं कर सकती कि इसमें बैठने वाले जन-प्रतिनिधि संसदीय मूल्यों की एक नई परंपरा शुरू करने की प्रतिज्ञा करें और अपने आचरण से दुनिया को एक नया संदेश दें। विवाद और वैमनस्यता में अंतर होता है। संसदीय प्रणाली में तर्क मूल आधार होता है। माना जाता है कि तर्क सही है तो उसका निष्कर्ष भी सही होगा, जिसे सत्ता पक्ष हो या विपक्ष, विनम्रता से स्वीकार करेगा, न कि संख्या बल से या फेफड़े की ताकत का प्रदर्शन कर दूसरे को दबाने की कोशिश करेगा। दुनिया में संसदीय प्रणाली की जननी मानी जाने वाली ब्रिटिश संसद की एक परंपरा रही है। कि चाहे कितना ही बड़ा नेता बोल रहा हो, अगर साधारण सदस्य भी बीच में खड़ा होकर टोके तो वह भाषण रोक देता है, जिसे संसदीय भाषा में 'यील्ड' करना कहते हैं। इसके पीछे तर्क यह होता है कि अगर कोई भाषण के बीच में खड़ा होता है तो शायद उसकी बात ज्यादा जरूरी या सामयिक है। कितनी अद्भुत होगी यह भावना और कितनी बड़ी अपेक्षा होगी उस सामान्य सदस्य से। दरअसल सत्ता पक्ष को भी नहीं भूलना चाहिए कि संसद में संख्या के आधार पर सरकार बनाने से विपक्ष द्वारा प्रश्न पूछने का हक खत्म नहीं हो जाता है। विपक्ष और मीडिया की संसदीय व्यवस्था में बड़ी भूमिका है जो सरकार के कार्यों की पड़ताल करती है और जो नहीं हुआ उसे जनता को संसद में हुई चर्चा के जरिए बताती है ताकि लोग गवर्नेंस की गुणवत्ता पर अपनी राय बनाएं।

दैनिक जागरण

Date:19-09-23

टीवी एंकरों के बहिष्कार से उठे प्रश्न

उमेश चतुर्वेदी, (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ पत्रकार हैं)

इसे दुर्योग कहें या कुछ और, ठीक 22 साल पहले सितंबर महीने में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश जूनियर ने दुनिया को यह एक संदेश दिया था कि या तो आप उनके साथ हैं या फिर जिहादी आतंकवाद के साथ। न्यूयार्क के ट्विन टावर, पेंटागन आदि पर हमले से गुस्साए बुश ने तब दुनिया को लगभग दो खेमों में बांट दिया था। कुछ ऐसा ही इस सितंबर में विपक्षी गठबंधन आइएनडीआइए ने एलान किया है। बस अंतर इतना है कि विपक्ष का एलान देश या राजनीति के बजाय टीवी के कुछ एंकरों को लेकर है। विपक्ष ने 14 एंकरों के बहिष्कार की घोषणा करते हुए एक तरह से यही संदेश देने की कोशिश की है कि या तो एंकर उनके साथ हैं या फिर संघी या भाजपाई हैं। अतीत में मीडिया पर पाबंदी लगाने वाली कांग्रेस इस बहिष्कार में प्रमुखता से शामिल है। इसमें दो राय नहीं कि कांग्रेस आइएनडीआइए का अघोषित अगुआ बन गई है। एंकरों का बहिष्कार करते हुए कांग्रेस अपने ही नेता जवाहरलाल नेहरू के लोकतंत्र और असहमति के सम्मान की धारणा को भूल गई। कांग्रेस को जब भी मौका मिलता है, भाजपा और संघ परिवार पर हमला करते वक्त वह नेहरूजी के लोकतांत्रिक मिजाज और असहमति के सम्मान का हवाला जरूर देती है। ऐसे में सवाल उठना लाजमी है कि क्या असहमति का सम्मान भी शर्तों पर आधारित है? क्या लोकतंत्र में विरोधी स्वरों को लेकर भी चयनात्मक धारणा रखनी चाहिए?

कांग्रेस का जैसा व्यवहार नजर आ रहा है, उससे यह धारणा भी बन रही है कि सत्ता में न रहने के चलते उसके पास बहिष्कार के अलावा दूसरा चारा नहीं है। बहिष्कार की इस घोषणा के बाद क्या माना जाए कि अगर भविष्य में उसे सत्ता मिली तो वह पत्रकारों को दंडित भी कर सकती है? पत्रकारिता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह सदैव आदर्शवादी ही रही है, लेकिन यह भी सच है कि पत्रकारिता आदर्शोन्मुखी होने की कोशिश करती रही है। इसी तरह राजनीति भी अपनी तरह से पत्रकारिता को साधने और उसके साथ संतुलित व्यवहार बनाने की कोशिश करती रही है। अपवाद स्वरूप ही दोनों तरफ से एक-दूसरे के प्रति अतिवादी रुख रखा जाता रहा है, लेकिन विपक्षी बहिष्कार के खुलेआम एलान ने एक तरह से नई परंपरा स्थापित करने की कोशिश की है। पत्रकार या पत्रकारिता ने अगर साथ नहीं दिया तो वह विरोधी है। भले ही पत्रकार या पत्रकारिता अपने तईं खुद को निरपेक्ष दिखाने की कोशिश करती रहे।

बहिष्कार की घोषणा ने यह साबित किया कि मीडिया और उसके माध्यमों के चहुंदिश विस्तार के बावजूद भारत का नागर और राजनीतिक समाज एक तरह से टीवी केंद्रित हो गया है। इस बहिष्कार से यह भी लगता है कि राजनीति को भरोसा है कि टीवी ही मतदाताओं को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। हालांकि यह मिथ है। बेशक मीडिया के माध्यम से छवि बनाने या बिगाड़ने की कोशिश कर सकते हैं, लेकिन आज सूचनाओं की इतनी बाढ़ है, उनके इतने माध्यम हैं कि मतदाता अब किसी एक माध्यम पर निर्भर नहीं रह गया है। वह अपनी राय किसी एक माध्यम से नहीं बना रहा है। इस बहिष्कार का एक संदेश यह भी है कि विपक्ष को लगने लगा है कि चुनाव टीवी के ही जरिये लड़े जा सकते हैं। अगर ऐसा होता तो अपनी बेहतर छवि बनाने वाली राजनीतिक शक्तियां अजेय बनी रहतीं, लेकिन हर नए चुनाव का नतीजा इस धारणा को खारिज करता है कि मतदाता सिर्फ एक माध्यम के मीडिया के प्रभाव में है। विपक्षी बहिष्कार के बाद सवाल यह भी उठा है कि क्या राजनीतिक दलों को अब चुनाव जीतने के लिए सिर्फ टीवी पर ही भरोसा है? क्या उन्हें अपने संगठन और कार्यकर्ताओं पर भरोसा नहीं रहा?

विपक्षी नेताओं को एंकरों से दिक्कत है कि उनसे सिर्फ उन्हें घेरने वाले ही सवाल पूछते हैं, लेकिन सत्ता से आंख मिलाकर वे सवाल नहीं पूछते। हालांकि अतीत में विपक्षी प्रवक्ता खुद भी अराजक और असंसदीय शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं। एक राष्ट्रीय टीवी चैनल में लाइव बहस के दौरान एक कांग्रेसी प्रवक्ता इतना गुस्साए कि साथ में बहस कर रहे एक सज्जन पर पानी का गिलास फेंक दिया था। कई नेता अपने विरोधी को बहस के दौरान अपशब्द भी बोलने से नहीं हिचके हैं। मीडिया को खेमों में बांटने की संस्कृति बंगाल में वाममोर्चा के शासन काल के दौरान रही। विपक्षी बहिष्कार का अंदाज उसकी ही याद दिला रहा है। हाल के कुछ वर्षों में विपक्ष की ओर से मीडिया को बार-बार नसीहत दी गई है कि उसे सत्ता की आंख से आंख मिलाकर सवाल पूछना चाहिए। यह कथन गणेशशंकर विद्यार्थी का है। विद्यार्थी ने जब यह कहा था, तब अंग्रेजों की सरकार थी। ऐसे में इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि क्या आजाद भारत की सरकारों की तुलना अंग्रेजी शासन से की जानी चाहिए। वैसे पत्रकारिता के पाठ्यक्रमों में विकास पत्रकारिता को भी पढ़ाया जाता है। अब इस पर भी विचार होना चाहिए कि मौजूदा सरकार के विकास कार्यों को रिपोर्ट करना उसका गुणगान है या फिर विकास पत्रकारिता का नमूना? अगर गुणगान है तो विकास पत्रकारिता को छद्म मान लेना चाहिए और अगर विकास पत्रकारिता जरूरी है तो फिर गुणगान का सवाल क्यों? वैसे यह तय है कि बहिष्कार से भविष्य में पत्रकारिता भी बंटी नजर आएगी। राजनीति को हमेशा बंटा हुआ मीडिया मुफीद नजर आता है। अगर ऐसा हुआ तो उससे लोकतंत्र का ही नुकसान होगा। लोकतंत्र को बचाना सिर्फ सत्ता पक्ष की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि विपक्ष की भी है।

जनसत्ता

Date:19-09-23

शिल्प को सम्मान

संपादकीय

कारीगर और शिल्पकार हजारों वर्षों से देश की समृद्धि का मूल आधार रहे हैं। प्रशिक्षण, प्रौद्योगिकी और आधुनिक उपकरण इनके काम को आसान बनाते हैं। मगर ये अकुशल, अप्रशिक्षित होते हैं तो इनका काम ही नहीं, तरक्की के रास्ते भी बंद होते हैं। केंद्र सरकार ने ऐसे ही शिल्पकारों और कारीगरों को उबारने, बाजार से प्रतिस्पर्धा करने लायक और इनके काम को बेहतर बनाने के लिए प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना की शुरुआत की है। यह योजना मूल रूप से धोबी, बढ़ई, कुम्हार, दर्जी, मछुआरे, नाई, सुनार, लुहार, हलवाई, मोची, मूर्तिकार आदि तबकों को ध्यान में रख कर लाई गई है। ये ऐसे लोग हैं जिनके लिए आज की प्रतिस्पर्धी दुनिया में आजीविका कमाना बहुत मुश्किल हो गया है, लेकिन इनके बिना हमारी जरूरतें भी पूरी नहीं होतीं। गांवों में तो बढ़ई, लुहार, टोकरी बुनने वाले जैसे तमाम कारीगरों के बिना किसी का काम ही नहीं चल पाता। इस योजना की शुरुआत करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा भी कि जैसे शरीर में रीढ़ की हड्डी की भूमिका होती है, ठीक वैसे ही हमारी जिंदगी में विश्वकर्मा यानी दस्तकारों,

कारीगरों और शिल्पकारों की अहमियत होती है। मगर जितना मुश्किल इन कारीगरों के बिना हमारी रोजमर्रा की जिंदगी है, उतना ही कष्टकारी हो चला है इनका जीवन।

अकुशलता, कच्चे माल की कमी, उपयुक्त बाजार न मिलना और मशीनों से बने सामान से प्रतिस्पर्धा जैसे कारकों के चलते ये कारीगर और शिल्पकार आज लगभग हाशिये पर पहुंच गए हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए योजना के पहले चरण में कारीगरों को प्रशिक्षण देने और फिर उन्हें अपना काम शुरू करने, उपकरण खरीदने के लिए पंद्रह हजार रुपए का अनुदान देने का प्रावधान है। प्रशिक्षण पूरा होने पर एक प्रमाण-पत्र मिलेगा, जिससे वे मान्यता प्राप्त शिल्पकार का दर्जा हासिल कर लेंगे। दूसरे चरण में उन्हें व्यवसाय शुरू करने के लिए पहले एक लाख और फिर दो लाख यानी कुल तीन लाख रुपए तक का ऋण दिया जाएगा। उसे प्रतिस्पर्धी बनाने, आज के युग के हिसाब से काम करने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रशिक्षण भी दिया जाएगा। इस योजना से स्वाभाविक ही उम्मीद बनती है कि बहुत सारे अकुशल लोगों को भी स्वावलंबन की दिशा मिलेगी।

हालांकि ऐसी योजनाएं सरकारें पहले भी लागू करती रही हैं, लेकिन वे बैंकों की ऋण प्रक्रिया और अफसरशाही का शिकार होकर कागजों तक सिमट कर रह जाती रही हैं। जरूरतमंद लोग बैंकों और अफसरों के चक्कर काटते रहते हैं, लेकिन उन्हें वाजिब लाभ नहीं मिल पाता। इस कारण उनकी जिंदगी में अपेक्षित बदलाव नहीं आ पाता। प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना देश के लगभग तीस लाख परिवारों को ध्यान में रखकर लाई गई है। इसमें कारीगरों और शिल्पकारों के बनाए उत्पादों और सेवाओं के लिए वैश्विक खिड़की खोलना भी एक मकसद है। पांच साल में इस पर तेरह हजार करोड़ रुपए खर्च होंगे। अगर ईमानदारी से इस योजना को लागू किया गया तो यह कारीगरों-शिल्पकारों के लिए बड़ी उम्मीद की किरण कही जा सकती है, जो अपने गांव-घर में रहकर अपने परंपरागत पेशे के जरिए ही रोजी-रोटी कमाना चाहते हैं। मगर इस योजना की कामयाबी इस बात पर निर्भर करेगी कि ऐसे शिल्पकारों को बाजार कितना उपलब्ध हो पाता है। अनेक सरकारी, सहकारी और स्वयंसेवी संस्थाएं हस्तशिल्पियों को बाजार उपलब्ध कराने के प्रयास में जुटी हैं, मगर भारी उद्योगों के सामने उन्हें चुनौतियों से पार ले जाना कठिन बना हुआ है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:19-09-23

फाइनल करें महिला कोटा

संपादकीय

लोकसभा और विधानसभाओं में एक तिहाई महिला आरक्षण सुनिश्चित करने की पुरानी मांग अब नई संसद के समक्ष है। पुरानी संसद, जो अपने अमृत काल, को प्राप्त कर एक शानदार अतीत का हिस्सा बन कर रह जाएगी, वहीं राज्यसभा में नौ मार्च 2010 को आधी आबादी को उसका ह दिलाने के लिए एक विधयेक पारित किया गया था। वह भी अनेक दौर के भारी हो-हंगामे और कितने स्थगनों के बाद। अब जब संसद का विशेष सत्र बुलाया गया है तो इसमें भी महिला आरक्षण

पर अंतिम मुहर लगाने की मांग जोर-शोर से की जा रही है। यह मुद्दा रविवार को सर्वदलीय बैठक में उठाई गई थी, उसे विपक्षी सांसदों ने सोमवार को उद्घाटन सत्र में भी उठाया। सरकार की तरफ से लोकसभा में इस पर चर्चा कराने या विधेयक को पारित कराने का कोई आश्वासन नहीं दिया गया है। हालांकि राज्यसभा में पारित होने से यह विधेयक अभी जिंदा है। लोकसभा से उसे पारित करने का का बचा हुआ है। यह कांग्रेस की अगुवाई वाली यूपीए सरकार के समय हुआ था, जिसमें सोनिया गांधी की एक अहम भूमिका थी। तब से दो लोकसभाएं बीत गई और अब तीसरी की अवधि भी बीतने की है। इसलिए कांग्रेस और उसकी अगुवाई वाला 'इंडिया' इस पर जोर दे रहा है। संभव है कि ऐसा कर उसका इरादा आम चुनाव में अपना चेहरा महिलाओं की अव्वल हिमायती पार्टी देखे जाने का हो, लेकिन अगर नरेन्द्र मोदी सरकार इस विधेयक को पारित करने का विचार करती है, तो इसका राजनीतिक फायदा उन्हें भी कम नहीं मिलेगा। बराबरी का राजनीतिक परिदृश्य बनाने का यह बेहतर अवसर है। इसलिए कि देश की मौजूदा परिस्थितियां महिलाओं की इस आकांक्षा के लिहाज से काफी उर्वर हैं। भारत दशकों पहले से देश के सर्वोच्च पदों पर महिलाओं को बिठाने का गौरव हासिल करता रहा है। अब तो यह ग्रासरूट तक पहुंच गया है। पंचायतों और स्थानीय नगर निकायों में आरक्षित की गईं एक तिहाई सीटों के सकारात्मक परिणाम आए हैं। बिहार तो 50 फीसद सीटें आरक्षित करने वाला पहला और मानक राज्य हो गया। बाद में कई राज्यों ने इसकी पहल की। तो मोदी सरकार के लिए इस पर विचार करने का दबाव अपने घटक-समर्थक दलों के भीतर से भी है। आरएसएस ने तो शनिवार को बाकायदा इस बारे में एक प्रस्ताव भी पारित किया है।